आश्रमो पर बढते बलात्कार के आरोप

कार्य तीन प्रकार के होते हैं पहला वे जिन्हे मनुष्य को करना चाहिए, दूसरे वे जिन्हे मनुष्य को नही करना चाहिए, तीसरे वे जिन्हे मनुष्य को करने नही दिया जाएगा। पहले प्रकार के कार्य सामाजिक कार्यो के रूप मे माने जाते हैं। दूसरे प्रकार के कार्य असामाजिक की श्रेणी मे आते हैं। तीसरे प्रकार के कार्य समाज विरोधी माने जातें हैं। पहले प्रकार के कार्यो को उत्तम कहा जाता है। दूसरे प्रकार के कार्य अनैतिक कहे जाते हैं तथा तीसरे प्रकार के कार्यों को अपराध कहा जाता है।

नवीनतम घटना क्रम मे आशाराम बापू की चर्चा समाज मे आयी है, जिसके अनुसार उन्होंने 16 वर्ष की लडकी के साथ यौन उत्पीडन का प्रयास किया। यह घटना सच है या झुठ यह जांच का विषय है किन्तु आम तौर पर साधु सन्तो द्वारा यह गुप्त रूप से होता है, ऐसा करने का विश्वास है। कामवासना मनुष्य की प्राकृतिक भूख है इसे विरले लोग ही पूरी तरह रोक पाते है। यही बात साधु संतो के लिये भी लागू होती है। उनमे भी अपवाद स्वरूप लोग ही स्वयं को रोक पाते है अन्यथा भारी नैतिक दबाव के बाद भी ये कोई न कोई मार्ग निकाल लेते है। यद्यपि ऐसे मार्ग मे बलात्कार शामिल नही होता है तथा बलात्कार के प्रकरण शायद ही कभी सुनने को मिलतें है।

प्राचीन समय मे भी आश्रमों मे ऐसा होने की बाते सुनने को आती है । राजा दशरथ के पुत्रो के गर्भाधान की बात हो अथवा कुन्ती के गर्भ धारण की बात हो अथवा ईशु मसीह के जन्म की खोज की जाय, कही न कही ऐसा धर्म स्थानो पर उँगली जाकर टिकती है। ये धर्म स्थान अथवा आश्रम वेश्यालय के समान उपयोग में नही आते थे, जहां कोई भी स्त्री पुरूष अनावश्यक होते हुए भी अपनी वासनाओ की पूर्ति के लिये इनका उपयोग करता हो। ये धर्म स्थान सिर्फ महिलाओं के लिये ही सुरक्षित होते थे जहां या तो विधवायें गुप्त रूप से अपनी भूख मिटा लेती थी अथवा वे महिलाएं वहां जाने का प्रयास करती थी जिनके पति संतान पैदा करने मे अक्षम होते थे, अथवा यदा कदा ऐसी महिलाए भी इनका उपयोग कर लेती थी जो अपने पति से अतृप्त रहती थी। ये महिलाएं ऐसे धर्म स्थानो मे बेरोक टोक आती जाती थी क्योकि किसी तरह की रोक टोक संदेह का वातावरण पैदा कर सकती थी। ऐसे स्थान धार्मिक आवरण भी ओढे रहते थे। जिससे यह व्यवस्था व्यभिचार या व्यवसाय का रूप न ले ले। यही कारण है कि यदा कदा ऐसी बाते सुनने के बाद भी दबा दी जाती थी अथवा अनसुनी कर दी जाती थी। आशाराम बापु की घटना पर विचार करें तो विश्वास नही होता कि आशाराम बापू ने बलात्कार करने की भूल की होगी। संभव है कि बापू भी अनेक संतो की तरह अपनी भूख मिटाने के लिये ऐसे कुछ उपाय करते हो लेकिन बिना सहमति के दबाव डालकर ऐसा कृत्य करना किसी भी रूप मे उचित नही लगता। यह अवश्य लगता है कि उक्त लडकी सहमत नही हुई होगी और उसे सहमत करने के लिये बापू ने हल्का फुल्का दबाव बनाने की भूल कर दी हेा तथा कामउत्तेजित होने पर अपना विवेक भी खों बैंठें हों। यह भी हो सकता है कि आशाराम बापू कोई वास्तविक संत ना होकर नकली संत ही हों। सच्चाई क्या है यह तो वह लडकी और बापू ही बता सकतें हैं अथवा जॉच के बाद सच्चाई सामने आ सकती है। किन्तु इतना अवश्य लगता है कि उस लडकी को आशाराम बापू के आचरण पर पहले से कुछ जानकारी रही होगी, तभी वह उनके पास जाने से कतरा रही थी। आशाराम बापू का कार्य चाहे अपराध की श्रेणी तक पहुचा हो या न पहुंचा हो किन्तु वह अनैतिक तो था ही क्योंकि बिना किसी महिला की तरफ से मांग आये उसके साथ ऐसे आचरण का प्रयत्न करना आश्रमो की गुप्त परम्परा के विपरीत है और यदि आशाराम बापू ऐसा अपराध करने के अभ्यस्त हों तब तो मामला गंभीर बनता ही है।

बाबारामदेव के विषय मे भी कई बार सुना जाता है। पिछले दिनो ही ऐसी चर्चाएं, भगवान रजनीश के बारे मे भी सुनने को मिलती रही है। सिरसा वाले बाबा राम रहीम के विषय मे यदा कदा ऐसी बाते सुनने को मिल जाती है, संभव है ये बाते असत्य भी हो किन्तु यदि सत्य भी हो तो जब तक वे बलात्कार की रेखा को नही छूती तब तक इनकी चर्चा करना अर्थ हीन है।

समाज मे ऐसे भी अनेक संगठन है जो अपने विशेष कार्यकर्ताओ को इस संबंध मे कठोरता से अनुशासित रखने का प्रयास करते हैं। ऐसे संगठनो मे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ अथवा कैथोलिक चर्चो को विश्वसनीय स्थान प्राप्त है। किन्तु धीरे–धीरे ऐसे संगठनो मे भी ऐसी गुप्त बातें प्रकाश मे आने लगी है। मध्य प्रदेश के एक मंत्री राधव जी का मामला तो खुलेआम उजागर हो गया। उनका मामला भी किसी तरह अपराध नही था। सिर्फ उसे अनैतिक कार्य की श्रेणी मे रखा जा सकता है। किन्तु राजनैतिक कारणो से इस मामले को बहुत अधिक गंभीर बना दिया गया। अनेक चर्चो के पादरीयो की भी बातें प्रकाशित हो चुकी है। दोनो ही संगठनो के प्रमुख लोग चिंतित है। जब तक ये बाते गुप्त थी तब तक तो कोई चिंता की बात नही थी, किन्तु प्रकाश मे आने के बाद ये बातें बहुत अधिक नुकसान करती है। सब समझते है कि ये कार्य मानवीय आवश्यकता के अन्तर्गत आते है, जिनसे बचना चाहिये, अथवा कम से कम प्रकाश मे न आने की सतर्कता तो अवश्य बरतनी ही चाहिये। फिर भी या तो भूल वश अथवा राजनैतिक प्रतिस्पर्धा के कारण ऐसी बातो को तिल का ताड बना दिया जाता है। सब जानते है कि राधव जी की सी डी राजनैतिक प्रतिस्पर्धा के कारण बनी। सी डी को आवश्यकता से अधिक प्रचारित करने मे भी राजनैतिक कारण रहे। चर्चो के विषय मे भी जो बात का बतंगड बना वह कही न कही धार्मिक प्रति स्पर्धा के साथ जुडता है अन्यथा आमतौर पर समाज ऐसे मामलो को उछालने से परहेज करता है। आशाराम बापू का मामला भी अधिक जोर से उछालने का कारण राजनैतिक प्रतिस्पर्धा ही है। वैसे आशाराम बापु अन्य अनेक मामलो मे दूसरों की स्वस्थ आलोचना भी नही सुन पाते हैं। थोडी सी आलोचना मे भी भक्त को हिंसक हो जाने की सलाह देना उनकी आम आदत है। ऐसी आदत भी कोई अच्छी बात नही है फिर भी हम तो यही कह सकते है कि यह उनका व्यक्तिगत मामला है। अच्छे बुरे का परिणाम वे स्वयं भोगेगें।

मै स्पष्ट हूँ कि हर अपराधी चाहता है कि अनैतिक कार्यो को भी अपराध की श्रेणी मे डाल दिया जाय। ऐसा होने से अपराधी समाज मे अलग थलग नही दिखेगा। सरकार भी चाहती है कि अनैतिक कार्यो को अपराध घोषित कर दिया जाये जिससे उसकी सक्रियता बनी रहे। यह तो हम आप सबका कर्तव्य है कि हम अनैतिक और अपराध को एक साथ न जुडने दे। यदि दोनो एक साथ जुडे तो एक दो प्रतिशत अपवाद स्वरूप लोगो को छोडकर बाकी सब कही न कही इसकी चपेट मे आ जाएगें और जब सभी चेहरे एक समान दिखने लगेंगे तो अपराधियो के लिये यह बहुत अच्छा अवसर

होगा, आवश्यकता है कि हम समाज मे अनैतिक और अपराध का अलग अलग वर्गीकरण करने की आदत डालें। अच्छा होगा यदि हम किसी अन्य के ऐसे अनैतिक कार्य की चर्चा करने से परहेज करें जो कही न कही हम स्वयं करते हो और हमारी सतर्कता अथवा चालाकी के कारण वह अब तक प्रकाश मे न आया हो। हो सकता है कि हमारी छोटी सी असावधानी आशाराम बापू के समान ही हमारे जीवन भर के सम्मान को कलंकित कर दे।

इस संबंध मे कानूनों की समीक्षा भी करनी आवश्यक है। राघव जी कार्य किसी भी रूप मे अपराध की श्रेणी मे नही आता। यदि वह घटना सच भी हो तब भी वह अनैतिक ही थी, अपराध नही। अनावश्यक कानूनों ने उसे अपराध घोषित कर रखा है। अन्य अनेक आश्रमो के विषय मे किये जाने वाले प्रचार का भी यही हाल है कि वे घटनाएँ अनैतिक होती है अपराध नही किन्तु उन्हें बहुत बढा चढाकर ऐसा प्रचारित किया जाता है जैसे कि बहुत बडा कोई सामाजिक अपराध हो गया हो। आशाराम बापू की घटना मे यदि थोडा भी बल प्रयोग हुआ तब तो वह अपराध हो सकता है अन्यथा उसे भी अनैतिक ही मानना पडेगा। यदि ऐसे मामलो मे लोभ लालच भी दिया गया हो तब भी वह अपराध नही हो सकता। यदि लडकी की उम्र बारह से भी कम न हो तब भी उसे अनैतिक ही मानना चाहिये क्योंकि सामाजिक दृष्टि से ऐसे मामलो मे बारह से उपर को बालिग मान लिया जाता है । किन्तु बल प्रयोग किसी भी रूप मे क्षम्य नही हो सकता चाहे वह किसी भी बडे से बडे सन्त द्वारा ही क्यो न किया गया हो। समाज का कर्तव्य है कि वह अनैतिक और अपराध को अलग अलग समझना शुरू करे । इन सन्तो का भी कर्तब्य है कि वे मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्रत्यक्ष विवाह को अधिक उपयोग करने की आदत डालें जिससे उनके समक्ष ऐसे संकट न पैदा हो। साथ ही समाज का यह भी कर्तब्य है कि वह आशाराम बापू के संभावित अपराध और राधव जी सरीखे लोगों की अनैतिकता को एक साथ जोड कर देखने की भूल न करे।

अभी हरियाणा यात्रा के दौरान मुझे पता चला कि हरियाणा के कुछ गांवो की एक जाति मे ऐसी व्यवस्था है कि वहां गांव मे एक अविवाहित पुरूष नियुक्त किया जाता है ,जिसे सम्मान प्राप्त भी होता है। ऐसा पुरूष किसी गुप्त मांग पर किसी परिवार मे जाता है तो उसे परिवार मे जाने तथा उस परिवार मे संभोग करने की पूरी छूट होती है, यहां तक कि परिवार के सभी पुरूष सदस्य वहां से दूर हो जाते है। यह सामाजिक व्यवस्था है जिसे यदि भोगवासना पूर्ति का उपाय ना बनाया जाए तो यह व्यवस्था किसी भी दृष्टि से गलत नही है। ऐसी ही व्यवस्था का बदला हुआ रूप साधु संतो के आश्रमों मे दिखता है। शारीरिक भूख को सीमा से अधिक रोकने की कोशिश की जायगी तो उससे विकृति पैदा होगी। यदि ऐसी व्यवस्थाओ को आवश्यकता से अधिक नैतिकता की ताकत से ढॅका जाएगा तब भी नुकसान बहुत होगा। यदि ऐसी व्यवस्थाओ को कानून के द्वारा अपराध घोषित कर रोकने की कोशिश होगी जैसे कि वर्तमान मे हो रही है तो समाज को अपूर्णीय क्षति होगी। भारत मे भी ऐसी सामाजिक व्यवस्थाओ को सीमा से ज्यादा नैतिकता की चादर मे ढॅककर मजाक बनाने की प्रवृत्ति बढ रही है। उससे भी आगे जाकर इस संबंध मे धडाधड बिना सोचे समझे कानून बनाये जा रहे हैं इन पर समाज को बहुत सोचने की आवश्यकता है।

कार्यलयीन प्रश्नो के उत्तर

भारत में अनेक लोग मुझे गॉधीवादी या सर्वोदयी के रूप मे मानते हैं, और ऐसा लिखते भी है। जबकि एक दूसरा समूह मुझे भाजपा समर्थक मानता है। जिसका अर्थ होता है, संघ के प्रति झुकाव। मैंने आज से करीब दस वर्ष पूर्व एक लेख लिखा था, जिसमे संघ और सर्वोदय की एकसाथ समीक्षा की गई थी। उस समय गुजरात के चुनाव हो रहे थे। उस समय पटना मे सर्वोदय सम्मेलन भी हो रहा था, उस सम्मेलन मे सर्वोदय के लोंगों को मैंने चुनाव से दूर रहने की सलाह दी थी। जिसका उन्होंने बुरा माना था। उसके बाद मैंने एक लेख लिखकर उस लेख के माध्यम से अपना संदेश सर्वोदय को दिया था। कुछ अपवादों को छोडकर शेष सर्वोदय मानता है कि गुजरात के चुनाव मे प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर सामने आना उसकी भूल थी। किन्तु मैने देखा कि उसके बाद भी जब गुजरात मे चुनाव हुए तब सर्वोदय के राष्ट्रीय नेतागण उस चुनाव मे भाजपा के खिलाफ इस तरह कूदे या कूदते हैं जैसे कि वही चुनाव लड रहें है। और विपरीत परिणामों के कारण उनके मन मे निराशा का भाव उत्पन्न होता है। मैने कई बार लिखा है कि सर्वोदय साम्यवादियों की कठपुतली बना हुआ है। मेरे विचारों मे दम है, क्योंकि सर्वोदय का पूरा का पूरा आचरण तटस्थता से पूरी तरह दूर होता है। ऐसा दिखता है कि सर्वोदय गॉधीवादी संस्था ना होकर साम्यवादियों की बी टीम है। उस समय का लिखा गया मेरा लेख इस प्रकार है जो पूर्व मे ज्ञानतत्व अंक 59, 16–30 नवम्बर 2002 मे छप चुका है, और 12 वर्ष बाद मैं उसे फिर से भेजकर आपको याद करा रहा हूॅ।

सर्वोदय और संघ, आमने सामने

भारत में दो ऐसे संगठन हैं जो पिछले पचास वर्षों से निरंतर चर्चा में रहे हैं। एक है सर्वोदय और दूसरा है राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ। दोनों ही संगठनों में एक से बढ़कर एक त्यागी तपस्वी लोगों की बहुलता है। दोनों ही के लोग निरंतर सकिय रहते हैं। दोनों की ही अपनी विशिष्ट कार्य प्रणाली है।

अनेक समानताओं के बाद भी दोनों में काफी असमानताएँ हैं। संघ एक संगठन का स्वरूप है जिसके नेता निर्णय करते हैं और कार्यकर्ता तदनुसार आचरण करते हैं जबकि सर्वोदय का प्रत्येक कार्यकर्ता ही स्वयं में एक नेता है। इसमें न तो एक नेतृत्व है न ही प्रतिबद्ध अनुकरण कर्ता। संघ का एक स्पष्ट लक्ष्य है हिन्दू तुष्टीकरण के माध्यम से भारतीय राजनीति में निर्णायक भूमिका अदा करना। सर्वोदय दिशा हीन है। उसका कोई स्पष्ट लक्ष्य नहीं। कभी भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन तो कभी स्वदेशी का नारा। कभी ग्राम स्वराज्य तो कभी साम्प्रदायिकता उन्मूलन। एक वर्ष के लिये भी इनके लक्ष्य टिकाऊँ या स्पष्ट नहीं होते। संघ मुस्लिम संगठनों की किया के विरूद्ध तीव्र योजनाबद्ध तथा परिणाम मूलक प्रतिकिया करता है। सर्वोदय संघ की प्रतिकिया के विरूद्ध लचर अविचारित तथा शक्ति प्रदर्शन के लिये प्रतिकिया करता हैं। संघ अन्य संगठनों का उपयोग करना जानता है, जबकि सर्वोदय किसी संगठन का उपयोग नहीं कर सकता भले ही उसी का कोई उपयोग कर ले। संघ नेतृत्व पूरी तरह सतर्क सकिय और

चालाक है। सर्वोदय नेतृत्व सकिय तो है किन्तु ढीला ढाला तथा शरीफ प्रवृति का है। संघ का उद्देश्य सत्ता प्रधान है, और परिणाम सफलता है जबकि सर्वोदय का उद्देश्य जनहित का है किन्तु परिणाम शून्य है।

सर्वोदय का पटना सम्मेलन सम्पन्न हुआ। मंच पर कुलदीप नैयर, प्रभाष जोशी सहित अनेक बुद्धिजीवी मौजूद थे। तीन दिनों के सम्मेलन में सिर्फ साम्प्रदायिकता ही विचारणीय मुद्दा रहा। साम्प्रदायिकता की चर्चा भी गुजरात चुनावों पर आकर सिमट गई। तय किया गया कि गुजरात के आगामी चुनावों में सर्वोदय को बिल्कुल सामने आकर भा.ज.पा. को हराना है। घोषित किया गया कि वर्तमान गुजरात चुनाव में, सर्वोदय के अस्तित्व को चुनौती मानकर प्रत्येक गांधीवादी कार्यकर्ता को पूरी शक्ति से लग जाना है। सभी वक्ताओं ने एक से बढ़कर एक घोषणाएँ कीं। ऐसा लगा कि गुजरात चुनाव एक तरह से सर्वोदय ही लड़ रहा है। चुनाव की तारीख घोषित होते ही सभी कार्यकर्ताओं को गुजरात जाने का आहवान किया गया। संघ की साम्प्रदायिकता की भरपूर आलोचना हुई। किन्तु यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मुस्लिम साम्प्रदायिकता की पूरे कार्यक्रम में कोई चर्चा ही नहीं हुई। कई वक्ताओं ने तो गोधरा अग्नि कांड तथा ग्यारह सितम्बर के वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर आक्रमण तक में मुस्लिम कट्टरवाद का बचाव किया। तीन दिनों का पूरा सम्मेलन देखकर कोई भी तटस्थ प्रेक्षक यह निष्कर्ष निकाल सकता था कि उपरोक्त आयोजन धर्म निरपेक्ष तटस्थ तथा समाधान खोजी विचारकों का सम्मेलन न होकर ऐसे शरीफ, भावना प्रधान तथा दिकभ्रमित, किन्तु स्थापित लोगों का सम्मेलन है जो पूरी तरह वामपंथी नारों से प्रभावित है। प्रभाष जी जोशी का भाषण पूरी तरह तथ्यों पर आधारित था किन्तु निष्कर्ष एक पक्षीय थे। उन्होंने कहा कि संघ हिन्दुओं का चर्च बनाना चाहता है जिससे कि वह भी हिन्दुओं को उसी तरह मनमानी दिशा में संचालित कर सके जिस तरह चर्च। उन्होंने यह भी कहा कि संघ हिन्दुओं का तालिबानीकरण करना चाहता है जो कि हिन्दुओं के लिए घातक है। श्री प्रभाष जी की दोनों ही बातें अक्षरशः सत्य है। संघ के ये प्रयास हिन्दुओं के लिये घातक है। किन्तु ईसाइयों की चर्च प्रणाली और मुसलमानों की तालिबानी कट्टरवाद समाज के लिये घातक है यह बात वे नहीं कह सके। सर्वोदय के उस मंच से हिन्दुत्व की मूल अवधारणा की सुरक्षा हेतु संघ को चुनौती दी गई किन्तु समाज की मूल अवधारणा को ईसाइयों की चर्च प्रणाली तथा मुसलमानों की तालिबान प्रणाली से होने वाले खतरों के प्रति समझते हुए भी चुप रहना उचित समझा गया। ऐसा महसूस हुआ कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ भारतीय जनता पार्टी की ही एक सामाजिक शाखा की तरह काम करती हैं तथा सर्वोदय कांग्रेस की सामाजिक शाखा की तरह है। सर्वोदय की प्रत्येक चर्चा में गांधी हत्या की प्रतिकिया महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। सर्वोदय गांधी हत्या के लिए तो संघ को अक्षम्य दोषी मानता है किन्तु भारत विभाजन में मुसलमानों की भूमिका अथवा सम्पूर्ण विश्व में अन्य धर्मावलम्बियों से निरंतर टकराव में मुसलमानों की भूमिका को भूल जाने योग्य दोष से अधिक नहीं मानता।

मेरे विचार में सर्वोदय भटक रहा है। सन पचहत्तर में सर्वोदय ने इंदिरा गांधी की तानाशाही के विरूद्ध एक निर्णायक पहल की। किन्तु सर्वोदय से भूल हुई कि उसने उक्त पहल करने में संघ तथा साम्यवादियों को मिलाकर एक मंच बना दिया। संघ और साम्यवादी उतने ही कट्टर होते है जितने कि मुसलमान। ये व्यक्ति के रूप में तो कहीं भी रह सकते हैं किन्तु दल के रूप में ये पूरी तरह सतर्क और सकिय रहते हैं। सर्वोदय ने तानाशाही के विरूद्ध ऐतिहासिक संघर्ष का नेतृत्व किया किन्तु देश में कोई निर्णायक परिर्वतन नहीं आ सका। अब पुनः सर्वोदय गुजरात में वही भूल दुहराने जा रहा है। गुजरात में भा.ज.पा. को हराकर कांग्रेस को सत्ता दिलाने से सर्वोदय की अपनी शक्ति का प्रदर्शन तो संभव है किन्तु समाज को कोई लाभ नहीं होगा। संघ को साथ लेकर सर्वोदय ने कांग्रेस को सबक सिखाया था और अब कांग्रेस को साथ लेकर भा.ज.पा.को सबक सिखाना किसी दृष्टि से समाज की समस्याओं के समाधान में ठोस पहल नहीं है। सर्वोदय को इससे बचना चाहिए।

वर्तमान समय में भारत ग्यारह ऐसी समस्याओं से जूझ रहा है जिनके समाधान की दिशा में न भा.ज.पा. गम्भीर है न ही कांग्रेस। ये हैं– 1. चोरी डकैती लूट, 2. बलात्कार 3. आतंकवाद 4. धोखा 5. मिलावट, कमतौल 6. आर्थिक असमानता, 7. श्रम शोषण 8. चरित्र पतन 9. भ्रष्टाचार, 10. साम्प्रदायिकता 11. जातीय संघर्ष।

ये सभी समस्याएँ निरंतर चिन्ताजनक रूप से बढ़ रही है। सर्वोदय का कर्तव्य है कि वह इन सभी समस्याओं पर गम्भीर मंथन करे। सन पचहत्तर का जयप्रकाश आंदोलन भ्रष्टाचार के विरूद्ध कान्ति का प्रयास था और वर्तमान गुजरात आन्दोलन साम्प्रदायिकता के विरूद्ध कान्ति का प्रयास है। पचहत्तर की क्रान्ति सफल होकर भी भ्रष्टाचार पर कोई निर्णायक रोक नहीं लगा सकी और वर्तमान गुजरात आंदोलन यदि सफल भी हो जाये तो साम्प्रदायिकता पर कोई रोक नहीं लगेगी भले ही साम्प्रदायिक संघर्षो में शामिल एक पक्ष ''संघ'' कमजोर हो जावे। एक दूसरे पर अन्याय करने के उद्देश्य से संघर्ष कर रहे मुस्लिम और संघ परिवार में से किसी एक का ऐसा विरोध करना जो दूसरे को मजबूत कर दे न ता न्यायसंगत है नही समस्या का समाधान। शान्ति के उद्देश्य से अन्याय को प्रोत्साहन किसी दृष्टि से उचित नहीं है। गुजरात में सर्वोदय के प्रयास कुछ इसी तरह की भूल माने जाने चाहिये।

उपर लिखी ग्यारह समस्याओं पर गम्भीरता से चिन्तन मनन करें तो ये सभी एक दूसरे से जुडी हुई हैं। इन सबका सामूहिक समाधान के साथ साथ इनके अलग अलग समाधान भी करने होंगे किन्तु सभी समस्याओं पर एक साथ काम शुरू करना होगा। संघ सिर्फ एक समस्या के समाधान में लगा

हुआ है और सर्वोदय ढुलमुल नीति पर चलता रहता हैं। संघ और सर्वोदय यदि मिलकर इन ग्यारह समस्याओं के समाधान में लग जावें तो एक वर्ष ही पर्याप्त हैं। किन्तु इसके लिये संघ को अपनी नीयत ठीक करनी होगी और सर्वोदय को अपनी नीतियाँ बदलनी पड़ेगी अर्थात् संघ को अपनी चालाकी कम करनी होगी और सर्वोदय को चालाकी बढ़ानी होगी। यदि संघ अपने लक्ष्य में संशोधन न भी करना चाहे तो सर्वोदय अकेला भी पॉच वर्षों में सफल परिवर्तन कर सकता है। किन्तु सर्वोदय को अपने शराफत को समझदारी में बदलना होगा। यदि अब भी सर्वोदय ने अपनी नीतियों में आमूल चूल परिवर्तन नहीं किया तो सर्वोदय समाज की समस्याओं के समाधान में कोई निर्णायक भूमिका निभा सकेगा, इसमें मुझे पूरा संदेह है।

प्रश्नोत्तर

1 संभाजी पवार गुरूजी, परभनी महाराष्ट्

यह सही है, कि दो–तीन विद्वान भी बैठकर एकमत नही हो पाते, जबकि राजनेता एकमत हो जाते हैं। क्योंकि उनके स्वार्थ का एक संयुक्त एजेंडा होता है, और विद्वानो का वैसा नही होता। इसमें मेरा प्रश्न यह है कि क्या विद्वान भी कोई संयुक्त एजेंडा नही बना सकते ? यदि नही बना सकते तो क्या वे विद्वान कहने की पात्रता रख सकतें हैं ? अगर वे आपस मे मिल बैठकर एक संयुक्त एजेंडा नही बना सकते तो उनकी विद्वता किस काम की ? विद्वान का मतलब होता है–विचारक। विचार किसका करना है ? विचार–क्या सच्चाई है, और क्या अच्छाई है, इसका करना पडता है। जब हम एक बार सच्चाई और अच्छाई समझ पातें हैं तो उस पर अमल करना हमारा कर्तव्य बनता है। यही धर्म होता है। इसके विपरीत अकर्तव्य अधर्म होता है। कर्तब्य धर्म स्वीकारणीय और अकर्तव्य धर्म त्याज्य होता है। इस तरह सच्चाई और अच्छाई के मुद्दे पर विद्वानों का संयुक्त एजेंडा बन सकता है। वैसी इच्छा शक्ति होनी चाहिए। योजकस्तत्र दुर्लभः इस दुर्लभ को सुलभ बनाए बिना प्रबल जनमत कैसे खडा होगा ? आपने सन्यास के मार्ग पर चलने की राह अपनी मुक्ति के लिए नही पकडी किन्तु प्रबल जनमत जागरण के लिए ही बहुत कुछ किया है। यह अच्छी बात है। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद सरस्वती भी संन्यासी होते हुए भी समाधि का सुख छोडकर लोकोपकार का मार्ग अपनाया था। इसलिए ही एक कवि ने कहा है कि समाधि का सुख छोडा देख दुःख जग का। अपना भला ना चाहा भला किया सबका। ऐसे ही आपने भी महर्षि दयानंद के पथ पर चलना निश्चित किया है, इसलिए आप बहुत–बहुत धन्यवाद के पात्र हैं।

बस आप केवल अकेले यह कार्य करने के बजाए अच्छाई सच्चाई के मुद्दे के एजेंडें पर विद्वानों को एकत्रित करके काम करेंगें तो सफलता शीघ्र मिल सकती है। कदाचित आपके सामने भी मिल सकती है, और भी बहुत कुछ है किन्तु अब केवल इतना ही।

उत्तर :– विचार मंथन तथा सक्रियता ये दोनो भिन्न–भिन्न होंतें हैं। अपवाद स्वरूप ही किसी मे विचार मंथन होता है और सक्रियता भी, किन्तु समान्यतया ऐसा नही होता। विचारक कभी एक नहीं होते, यह स्वाभाविक है। किसी बिंदु पर कोई विचारक एक तरह का निष्कर्ष निकालता है तो दूसरा बिल्कुल विपरीत। इसका अर्थ यह नही कि दोनो मे से कोई एक विचारक नही है। कोई विचारक आज किसी वि ाय पर एक निष्कर्ष निकालता है तो कुछ दिन बाद उसके विचार बदल भी सकतें है। कई विचारक किसी एक बिंदु पर तो एकमत हो सकतें हैं। किन्तु सभी मुद्दो पर विचारक एक मत नही हो सकते। इसलिए आपका यह सुझाव अनुपयुक्त है कि विचारक एकसाथ मिल–बैठकर निष्कर्ष निकाले। यदि विचारकों को एक करने का प्रयास होगा तो वह एक संगठन बन जाएगा और संगठन स्वतंत्र विचारों मे बाधक होता है। यही कारण है कि किसी भी संगठन मे स्वतंत्र विचारों का अभाव हैं। जिसके परिणाम स्वरूप वर्तमान मे समस्याए तथा टकराव जैसी बाते पैदा हो रही है। क्रियाओं मे एकरूपता तो होती है, किन्तु देश, काल, परिस्थिति अनुसार संशोधन या सुधार नहीं होते। मेरा आपसे निवेदन है कि स्वतंत्र विचारकों को स्वतंत्रता पूर्वक विचार–मंथन करने का अवसर दीजिए, निष्कर्षो पर अमल करने का कार्य विचारक का नही, समाज का होता है। यह करने वालों का समाज में अभाव नही है। अभाव है स्वतंत्र विचार मंथन का। अलग–अलग संगठन विचार मंथन के अभाव मे एक दूसरे के साथ टकराव पैदा करतें हैं जो घातक परिणाम देता है। ऐसे टकरावों को राकने की आवश्यकता है। मै मानता हूँ कि कर्तव्य धर्म तथा अकर्तव्य अधर्म होता है अर्थात त्याज्य होता है। किन्तु अकर्तव्य कभी समाज विरोधी कार्य नही होता। अतः अकर्तव्य को अपराध से अलग अलग रखकर देखने की आवश्यकता है। जब अपराध बढ रहें हों तब अकर्तव्य की बहुत अधिक आलोचना ठीक नही।

2 अविनाश भाई : सर्वसेवा संघ परिसर राजघाट वाराणासी

प्रश्नः मैने आपको लगभग 15 प्रश्न भेजे थे। जिनका उत्तर आपने 1–15 जुलाई 2013 के ज्ञानतत्व मे दिया है। आपके उत्तरों से काफी कुछ स्पष्टता भी हुई है, और लगभग संतुष्टि भी हुई है। किंतु कुछ प्रश्न अब भी या तो अनुत्तरित है अथवा उत्तरों से ही प्रश्न निकलता है। श्रम और बुद्धि जब रूपॉतरित होकर धन के रूप मे इकट्ठी होती है, तो वह इकट्ठा होना भी न्याय संगत नही है। किंतु जब धन ही धन को बढाने लगे, तब तो वह ज्यादा ही गलत हो जाता है। दूसरा प्रश्न यह भी है कि प्राकृतिक संसाधनों का कुछ लोंगो का अधिकार होकर, वे संसाधन ही धन वृद्धि का माध्यम बन जावे, तो वह तो और भी ज्यादा गलत है। प्राकृतिक संसाधन ईश्वर की देन है तथा कोई व्यक्ति उसका मालिक नहीं हो सकता। यदि मालिक हो सकता है, तो वह समुदाय ही है, बिना समुदाय की अनुमति के प्राकृतिक संसाधनों को बेचना कैसे न्याय संगत हो सकता है। यदि चोरी डकैती और लूट पाप है, तो धन संग्रह, वह भी औसत से ज्यादा तो और भी बडा पाप माना जाना चाहिए।

यूरोप ने निरंतर अपनी पूंजी का विकास किया है, तो वह विकास ना श्रम के आधार पर हुआ है ना बुद्धि के आधार पर। उस विकास के पीछे तो उपनिवेंशों सें की गई लूट ही छुपी हुई है। इसलिए यूरोप के विकास को विकास का अनुकरणीय मॉडल नही माना जा सकता। यद्यपि आपने पूंजीवाद को घेरने के लिए कुछ उपाय सुझायें हैं। जैसे आपने संम्पति पर व्यक्तिगत अधिकार को हटाकर संम्पति पर पूरे परिवार का सामूहिक अधिकार के बारें मे सोचा है, अथवा स्वतंत्र अर्थपालिका की भी आपने कल्पना की है। किंतु ना कोई पूंजिपति आपकी बात को लागू होने देगा ना ही सरकार इसे पसंद करेगी। वैसे भी आपके सुझाव पूंजीवाद पर ऑशिक अंकुश लगाने मे ही सफल हो सकेंगें जो ना पर्याप्त है, ना पूरी तरह न्याय संगत।

आपने लिखा है कि संविधान की नई परिभाषा इस प्रकार होती है, ''संविधान राज्य के अधिकतम और समाज की न्यूनतम अधिकारों की सीमाऍं निश्चित करने वाला दस्तावेज है,'' तो आपके अपने प्रस्तावित संविधान के आधार पर क्या यही परिभाषा है ? राज्य इस परिभाषा का दुरूपयोग भी तो कर सकता है ? आप भी यह मानते हैं कि शोषण कोई आर्थिक समस्या का हल ना होकर एक सामाजिक समस्या है। पूंजीवाद मे शोषण होता ही है। आपने भी पूंजीवाद से बचने के लिए कुछ ऑशिक उपाय बतायें हैं, जो पर्याप्त ना होते हुए भी समाधान का प्रारंभ तो कहा ही जा सकता है।

आपने संविधान सभा का एक प्रारूप बताया है। इसके अनुसार संविधान संशोधन के अवसर पर देश के सौ वरिष्ठ अनुभवी व्यक्ति तथा डिग्री कॉलेज के निर्वाचित प्राचार्यों की महत्वपूर्ण भूमिका होगी। मेरे विचार से जब ग्राम –सभाओं को हम सब प्रकार के अधिकार दे ही रहें हैं तो क्यों ना संविधान संशोधन के अधिकारों मे भी प्राचार्यों की संविधान सभाओं की जगह ग्राम सभाओं की महत्वपूर्ण भूमिका जोड दें। उसी तरह विदेश व्यापार नियमन जैसे मुद्दों पर भी वर्तमान संसद या सरकार का एकाधिकार ना रखकर ग्राम सभाओं की भूमिका हो। इसी तरह आर्थिक स्वतंत्रता अथवा व्यापार की स्वतंत्रता पर भी ग्राम सभा का नियंत्रण होना चाहिए। बिना ग्राम–सभा की स्वीकृति के गॉव में कोई भी आर्थिक इकाई या कम्पनी अपना काम शुरू ना कर सके। हम जब प्रस्तावित संविधान का प्रारूप बना ही रहें हैं तो आधे–अधूरे प्रस्ताव देने की अपेक्षा पूरे प्रस्ताव देना अधिक अच्छा होगा। मुझे आशा है कि आपने जिस तरह पिछले पत्र के उत्तर मे कुछ बातें समझाने का प्रयास किया , उसी तरह अब इन शेष बची शंकाओं की चर्चा भी कर सकेंगें।

उत्तर : न्याय और व्यवस्था का संतुलन कैसे हो यह प्रश्न लंबे समय से अनुत्तरित रहा है। और अब भी है, तथा मेरी समझ मे आज भी उसी तरह मुॅहबायें खडा है। यदि न्याय की तरफ पलडा झुकता है, तो व्यवस्था कमजोर होती है। उसका परिणाम होता है न्याय की पूर्ति और मॉग मे असंतुलन, दूसरी ओर यदि पलडा व्यवस्था के तरफ झुक जाता है तो आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक असमानता बढने लगती है, जो बढते–बढते कभी कभी तो तानाशाही तक चली जाती है। पूरी दुनिया का मान्य सिद्धांत है कि न्याय की मॉग का सीमा से अधिक बढना अव्यवस्था का आमंत्रण है तथा अव्यवस्था का अंतिम समाधान तानाशाही से ही होता है, जो कोई नही चाहता और आ जाती है। आवश्यक है कि न्याय की मॉग और व्यवस्था की मात्रा का संतुलन बनाकर रखा जाए। स्वतंत्रता के तत्काल बाद ही नेहरू और अंबेडकर सरीखे लोग न्याय की मॉग तथा न्याय की भूख पैदा करते रहे। बिना इस बात को समझे कि उनके पास पूर्ति की व्यवस्था क्या है? नेहरू और अंबेडकर तानाशाही की दिशा मे झुके हुए थे। इन्हें लोकतंत्र के पश्चिमी मॉडल तक ही ऑशिक रूप से आस्था थी। लोकस्वराज्य या ग्राम स्वराज्य जैसे विंचारों पर उन्हें आस्था थी ही नही। आपने प्राकृतिक संसाधनों के विषय मे जो भी प्रश्न उठायें हैं, वे पूरी तरह नयाय संगत है, किंतु इन प्रश्नों का समाधान वर्तमान समय मे कैसे होगा, जिससे समाधान में व्यवस्था की भूमिका ज्यादा से ज्यादा ना बढती चली जाए। हम देख रहें हैं कि न्याय की पूर्ति के नाम पर व्यवस्था अधिक से अधिक शक्तिशाली होती जा रही है। और व्यवस्था का अधिक शक्तिशाली होना शायद आर्थिक विषमता दूर करने मे सहायक हो जाए किंतु राजनैतिक या अधिकारों की विषमता तो बढाएगा ही। जब तक ग्राम सभाओं को आर्थिक और राजनैतिक अधिकार प्राप्त नही हो जाते तब तक वर्तमान शासन प्रणाली से न्याय की मॉग करने मे बहुत सोचना समझना पडेगा। बहुत संतुलन बनाना पडेगा।

मैंने भी प्रस्तावित संविधान का जो प्रारूप बनाया है वह नये संविधान का प्रारूप ना बनाकर वर्तमान संविधान मे ही कुछ संशोधन करने तक सीमित है। मैं मानता हूॅ कि हमारे सुझाव पूरी तरह आदर्शवादी नही है, लेकिन मैं यह भी समझता हूॅ कि अधिक आदर्शवादी सुझाव सिर्फ किताबों तक ही ना रह जाए। इसलिए ही मैनें आर्थिक समस्याओं के आर्थिक समाधान का प्रस्ताव दिया है, तथा सामाजिक समस्याओं के समाधान का सारा दायित्व समाज पर छोड दिया है। मेरे विचार से यदि राज्य को ाो ाण मुक्ति कि दिशा मे सक्रिय करने की भूमिका दी गई तो राज्य स्वयं ही ाो ाण मुक्ति के नाम पर ाो ाण करने लगेगा, अथवा समानता के नाम पर हमारी स्वतंत्रता भी खतरे मे पड जाएगी। यही कारण है कि मैं राज्य से किसी प्रकार की मॉग करने की अपेक्षा, पहले समाज व्यवस्था मे उसकी भूमिका सीमित करने का प्रयास कर रहा हूॅ। सैद्धॉतिक दृष्टि से क्या उचित है, इसकी अपेक्षा वर्तमान

परिस्थितियों मे क्या कुछ संभव है, इस तरह का तालमेल बैठाने का मेरा प्रयास है। हम आप प्रत्यक्ष बैठेंगें तब इस संबंध मे और चर्चा होगी। मैं कोई अंतिम रूप से निष्कर्ष प्रस्तुत नहीं किया हूँ। मिल बैठकर उसमें संशोधन के मार्ग खुलें हैं।

3 रचना दुबलिश। वेस्टर्न कचहरी रोड मेरठ

प्रश्न– इतिहास साक्षी है कि सन 1947 मे रूपया और अमेरिकी डॉलर समान मूल्य के थे यानि एक रूपया बराबर एक डॉलर और अब उल्टा हो गया है यानि एक डॉलर बराबर अढसठ रूपये। बात भले ही अटपटी सी लगे लेकिन शत–प्रतिशत तर्क संगत है, कि कहीं न कहीं गांधी जी यानि बापू का इस रूपये के गिरने से कोई न कोई सम्बंध अवश्य है क्योकि जिस दिन से भारतीय मुद्रा पर बापू जी का चित्र अंकित हुआ है बस उसी दिन से रूपया निरंतर गिरता ही जा रहा है। महात्मा बापू जी का चरित्र कैसा था इस पर अब टिप्पणी करना उचित नही क्योकि दिवंगत आत्मा को शान्ति मिले यही भारत की सभ्यता है लेकिन भारतीय रूपया तो निरंतर क्रमशः गिरने की ओर ही अग्रसर है, और यह भी पता नही कि कहां तक गिरेगा। चूकि भारत मे टोने टोटके बहुत होते है इसलिये इस टोटके को अपनाने मे भी कोइ बुराई नही कि एक बार गांधी जी की जगह लक्ष्मी गणेश का चित्र भी अंकित करके देख लिये जाऍं और वैसे भी किसी भी राष्ट्र की मुद्रा पर किसी नेता नही बल्कि शासक का चित्र ही अंकित हुआ करता है और गांधी कोई शासक नही बल्कि एक नेता ही तो थे। दबी जुबान मे आज भी बुद्धिजीवी वर्ग गांधी जी को ही देश की बर्बादी का जिम्मेदार मानता है। जिस किसी भी भारतीय व्यक्ति के हाथ मे पांच सौ या हजार रूपया का नोट आता है तो वह भी सबसे पहले उस नोट को रौशनी की ओर करके गांधी जी का वाटर मार्क चित्र देखता है कि गांधी जी असली भी है कि नही। लेकिन गांधी जी असली और नकली दोनो ही नोटों मे देश की दुर्दशा पर मुस्कराते हुए ही दिखते हैं।

उत्तर– आपने यह ई–मेल मुझे भेजा, इसका आशय मै नही समझा कि आपने क्या समझ कर भेजा। गांधी से रूपये के गिरने का क्या संबंध हो सकता है यह आपके लेखन मे कही पता नही चलता । भारतीय मुद्रा डालर के मुकाबले अब तक 75 गुणा गिर जानी चाहिये थी। क्योंकि स्वतंत्रता के बाद रूपये का मूल्य मुद्रा स्फीति के आधार पर 75 गुना घट गया स्वाभाविक है कि हमारी आंतरिक मुद्रा मे गिरावट हुई है और डॉलर वही है तो एक डॉलर को 75 रूपया के बराबर होना ही चाहिये जो एक वर्ष बाद 80 रूपये के बराबर और तीन चार वर्षो के बाद सौ रूपये के बराबर भी हो सकता है। इस सीमा तक यदि डालर और रूपये का संबंध बना रहता है तो यह रूपये की गिरावट नही है बल्कि मुद्रा स्फीति के आधार पर रूपये का पुनर्मुल्यांकन है।

यदि आपने डालर और रूपये की तुलना के लिये यह विचार लिखकर मेरे पास भेजा है तो मै आपके विचारो का स्वागत करता हूँ और यदि आपने गांधी के नाम पर फुहड मजाक करने की नीयत से यह ई–मेल भेजा है तो आपसे निवेदन है कि आप भविष्य मे मेरे साथ इस प्रकार की मजाक की टिप्पणीयां भेजने का प्रयास ना करें।

तलाक कानून में तबाह करने वाला संशोधन ''जनसत्ता से साभार''

सरकार तलाक कानूनों में फिर एक संशोधन करने के लिये संसद के दरवाजे पर पहुचॅंने के लिए तैयार खड़ी है। हिन्दू विवाह अधिनियम में संशोधन को लेकर सरकार की यह अति सक्रियता परेशानी और अचम्भे में डालती है। इस सरकार का कार्यकाल एक साल के भीतर ही खत्म होने वाला है, लिहाजा ये अति सक्रियता आत्मघाती है। सम्पत्ति के बंटवारे के बारे में इसकी टेढ़ी चाल भारतीय परिवारों के विघटन का कारण बन सकती है, इस बंटवारे वाले सेक्शन को लेकर जो उहापोह स्थिति उत्पन्न हो गयी है, सरकार के भीतर उससे स्पष्ट है कि इस सरकार के मंत्री खुद भ्रम की स्थिति में है और वो एकमत रुख नही रखते।

इस कानून में निहित संपत्ति बंटवारे और मुआवजे से सम्बंधित बिन्दुओं पर हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13–बी और 'विशेष विवाह अधिनियम' की धारा 28 आपसी सहमति से तलाक के अर्तगत संम्पत्ति बंटवारे/मुआवजे पर जो सरकार के भीतर अन्तर्विरोध उभर कर आये है, उससे ये समझ में आता है, कि सरकार में शामिल मंत्रियों से लेकर अन्य पार्टी के सांसदो को भी इस कानून के बारे में ज्यादा कुछ पता नही है, जिससे ये सहज ही समझा जा सकता है कि जनता जिसका वो प्रतिनिधित्व करते हैं उनमें कितना भ्रम व्याप्त होगा, फिर भी ये सरकार इस संशोधन को इतनी जल्दबाजी में कानूनी जामा पहनाना चाहती है ये हैरान करता है ।

ये बताना आवश्यक रहेगा कि सरकार ने संशोधन को पास कराने की हड़बड़ी में लॉ कमीशन और संसदीय स्थायी समिति को पूरी प्रकिया से बाहर रखा है। इसके खतरनाक दुष्परिणाम होंगे और भारत के युवक–युवतियों का भविष्य अॅंधेरे के गर्त में जा सकता है। ये निश्चित है कि अगर ये बिल अपने प्रस्तावित स्वरुप में पास हो गया तो ये एक और उदाहरण होगा गैर जिम्मेदाराना तरीके से अस्तित्व में लाये गए कानून का जो प्रकियागत खामियों से लैस होगा। लिहाजा सेव इंडिया फॅमिली फाउंडेशन हिंदू विवाह अधिनियम (संशोंधन) बिल 2010 को अपने वर्तमान स्वरुप में अस्वीकार करती है और इसको वापस लेने का आग्रह करती है। इसके इस स्वरुप में पारित कराने का तीब्र विरोध करती है ,सेव इंडिया फॅमिली फाउंडेशन का ये भी मानना है कि न्यायधीशों को इस कानून के तहत असीमित अधिकार देना किसी तरह से भी जायज नही है खासकर महिलाओं से संबंधित मासिक गुजारा भत्ता/मुआवजे के निर्धारण में ,हम इससे भी अपनी असहमति दर्ज कराते हैं।

इस कानून को महिलाओ के पक्ष में बताना खतरनाक है, क्योंकि भारत में सत्तर प्रतिशत परिवार गरीब वर्ग में है जो ज्यादातर कर्ज में डूबे हैं और जिनके पास संपत्ति नाम की कोई चीज नही है, जिनके उपर पहले से ही बेटी बेटों के भरण पोषण और उनके शादी ब्याह

जैसी जिम्मेदारियॉ है, ये कानून केवल एक खास वर्ग में सिमटी धनी महिलाओं को ध्यान में रखकर अस्तित्व में आया है, भारतीय जनता पार्टी, समाजवादी पार्टी ,बहुजन समाज पार्टी जैसे राजनैतिक दलों को इसके विरोध में खड़े होकर इसके खिलाफ वोटिंग करनी चाहिए। ऐसा इसलिए कि इस कानून के पारित होने के बाद तलाक के प्रतिशत में अगले दस सालों में लगभग तीस प्रतिशत तक की बढ़ोत्तरी हो सकती है।

प्रस्तावित हिन्दू विवाह संशोधन को सम्पूर्णता में देखे जाने की जरुरत है जैसे कि संयुक्त रुप से बच्चों का भरण पोषण ,बच्चों की जिम्मेदारियों के वहन से सम्बंधित कानून की रौशनी में सिर्फ मासिक भत्तें के निर्धारण में सक्रियता दिखना उचित नही । क्या पति ताउम्र भत्ता गुजारा देता रहेगा संपत्ति बंटवारे के बाद भी जिसका हिस्सा खुद की संपत्ति और विरासत में मिली संपत्ति से मिलकर बनता है? ये कुछ अति महत्वपूर्ण बिंदू है जिनको संज्ञान में लेना आवश्यक है और इन्हें उनके बीच चर्चा में शामिल करना है जो इन कानूनों से प्रभावित हो रहें है अव्यवस्थित रुप से निर्धारित बिन्दुओं को कानून बना के पास करना बेहद गलत है।

हमारा मानना है कि सरकार इस कानून को तुरंत वापस लें और मौजूदा संसदीय अधिवेशन में इसे ना पेश करे। सरकार इस कानून की भाषा में परिवर्तन करें, और इसे लिंग आधारित भेदों से उपर करें। जिसमें पति और पत्नी को ''जीवनसाथी'' स्त्री और पुरुष को ''व्यक्ति'' में परिवर्तित किया जाए। इसके साथ ही किसी भी जीवनसाथी को तलाक अर्जी का विरोध करने की छूट हो। कानून की समानता के रोशनी में सरकार इस बात का भी निर्धारण करे कि अर्जित संपत्ति के निर्माण में पत्नी का क्या सहयोग रहा है, या पति के परिवार के भौतिक सम्पदा के विस्तार में क्या योगदान है। इसको निर्धारण करने का सूत्र विकसित किया जाय। इसके निर्धारण में शादी की अवधि को ध्यान में रखा जाये। बच्चो की संख्या का ध्यान रखा जाए। स्त्री कामकाजी है या घरेलु , अगर स्त्री तीन बच्चो की माता है, वृद्ध सदस्यों की जिम्मा ले रखा है, तो उसका योगदान अधिक है। बजाय उस स्त्री के जो कामकाजी है और जिसके एक साल की अवधि में कोई बच्चे नही है ।

इस सूत्र के मुताबिक ही किसी व्यवस्था को संचालित किया जाए। जीवनसाथी को मासिक भरण पोषण के सन्दर्भ में मुआवजे के सन्दर्भ में या किसी और समझौते के सन्दर्भ में, न्यायधीश महोदय इस सूत्र की रोशनी में अपने विवके का इस्तेमाल कर उचित फैसले लें। लिहाजा इस सूत्र के अंर्तगत अगर स्त्री के सहयोग का अनुपात पति या उसके परिवार के संपत्ति के अर्जन मे पूरी संम्पति के मूल्य से अधिक है, तो उसे पूरी संपत्ति पर हक दिया जा सकता है। अगर पत्नी इसको लेने से इन्कार कर सकती है, तो वो मासिक गुजारे भत्ते विकल्प को अपना सकती है। कहने का तात्पर्य यह है, कि संपत्ति में हिस्सेदारी के बाद उसका मासिक गुजारे भत्तें को लेते रहने का अधिकार खत्म हो जाता है। दोनो विकल्पों का लाभ लेने का हक नही मिलना चाहिए। सरकार को इस सूत्र को अस्तित्व में लाने के लिये एक कमेटी या योजना आयोग का गठन करना चाहिए।

सरकार को संयुक्त भरण पोषण का अधिकार बच्चे के बायोलॉजिकल अभिभावक द्वारा और बच्चे के ग्रैंड़ पेरेंट्स से स्थायी संपर्क को अनिवार्य कर दिया जाए, जब तक कि कोर्ट इसके विपरित राय ना रखती हो। इसके अनुपालन के अभाव को आपराधिक जुर्म के श्रेणी में रखा जाए। अगर कोई अभिभावक इस संयुक्त भरण पोषण के जिम्मेदारी से मुँह मोड़ रहा है या ग्रैड़ पेरेंट्स से संपर्क में बाधा डाल रहा है तो इसको अपराध माना जाए।

सरकार ये सुनिश्चत करे कि न्यायालय को अपने विवेक के अधिकार का इस्तेमाल करने की सीमित आजादी हो। संपत्ति बटवारें के निर्धारण में, मासिक गुजारे भत्ते के सन्दर्भ मे, और बच्चे के पालन पोषण संबंधी मामलों में बहुत ज्यादा अधिकार न्यायालय को देने का मतलब ये होगा, कि कोर्ट का अवांछित हस्तक्षेप, मामले को और जटिल बना देगा, या कोर्ट का गैर जिम्मेदाराना रुप, स्थिति को और विकृत कर देगा। अधिकतर पुरुष फैमिली कोर्ट पर भरोसा नही करते, क्योंकि इस तरह की कोर्ट पुरुषों के अधिकार के प्रति असंवेदनशील रही है। न्यायालय वर्षों लगा देती है पति को अपने बच्चों से मिलने का फैसला देने में और तब तक बच्चे की स्मृति पिता के सन्दर्भ में धूमिल पड़ जाती है।

सरकार ये सुनिश्चित करे कि महिला पैतृक संपत्ति और वहॉ अर्जित संपत्ति में जो हिस्सेदारी बनती हो उसे अधिग्रहित करें। उसे अपने कब्जे में लें। सरकार को हिन्दू विवाह अधिनियम में संशोधन करके महिला को अपने पिता के घर में रहने का स्थान सुनिश्चित करे। ताकि कम अवधि वाली शादी में अलगाव की सूरत में उसे रहने की जगह उपलब्ध हो। अगर माता पिता इस सूरत में उसे पति के घर जाने के लिए अर्जित संपत्ति में हिस्सा देने से इन्कार करते है तो इसे असंज्ञेय प्रकार का अपराध माना जाए।

(लेखक सेव इंडिया फेमिली फाउण्डेशन से जुडे है।)

उत्तरः—जो कुछ अभी तक महिलाओं के विषय में समाज में चल रहा है,वह कोई अच्छी स्थिति नहीं है। महिलाओं को पारिवारिक संपत्ति में किसी ना किसी तरह का अधिकार तो मिलना ही चाहिए। यह अलग बात है, कि सरकार हमारी सामाजिक अव्यवस्था का लाभ उठाकर उसके साथ अनेक प्रकार का खिलवाड़ कर रही है। आप बहुत अच्छे विद्वॉन है, और आपने वर्तमान कानूनों की बुराईयों का सजीव चित्र खींचा है, किन्तु आपने यह नही बताया कि महिलाओं की समस्या मे क्या सुधार होना चाहिए । मैं समझता हूँ कि 30 वर्ष पहले दिये गये मेरे सुझावों पर आप लोगों ने ध्यान दिया होता कि परिवार की सम्पत्ति में परिवार के सभी सदस्यों का समान अधिकार होना चाहिए चाहे वह स्त्री हो या पुरुष बालक हो या वृद्ध सबको सम्पत्ति में समान अधिकार देने की बात मजबूती से उठ जाती तो सरकार द्वारा किये गए

ऐसे अनावश्यक कदमों का विरोध करने का नैतिक आधार मिल जाता। अब भी यदि परिवार की सम्पत्ति में सबका समान अधिकार जैसी चर्चायें तेजी से उठाई जाए तो बहुत कुछ सुधर सकता है। इसी तरह विवाह या तलाक जैसे मुददों को परिवार का ऑतरिक विषय मान लिया जाए न सामाजिक और ना ही संवैधानिक। प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार दे दियें जाए और उन अधिकारों मे स्त्री–पुरूष का भी कोई भेद ना किया जाए तो अनेक समस्यांए अपने आप हल हो सकती है। जन्म लेने वाला बालक परिवार का सदस्य होगा। ना किसी माता का ना पिता का परिवार की संम्पति सबकी बराबर होगी। परिवार एक रजिस्टर्ड ईकाइ होगा जिसे अपने ऑतरिक मामले निपटाने मे पूर्ण स्वतंत्रता होगी। संवैधानिक रूप से भारत परिवारों का संघ होगा, राज्यों का नही। मेरे विचार से कुछ ऐसे संशोधन किये जा सकते हैं।